साध संगति डे पेरु, खंयो जंहिं खुशीअ सां,
मिटियो तंहिंजे मन मों, अविद्या, भरमु अंधेरु,
पाए सुखु सरूप जो, थियो सामी चए सुमेरु,
करे सघे केरु, महिमा तंहिंजी मुंहं सां.

सत्संग की महिमा का वर्णन करते हुए सामी जी कहते हैं कि जो मनुष्य खुशी से संतों की संगत में, सत्संग में जाता है, उसके मन से अविद्या/अज्ञान और भ्रम का अंधकार मिट जाता है। ऐसा मनुष्य अपने स्वरूप का, परमात्मा का सुख प्राप्त करता है और फिर वह मनुष्य मानो मेरु पर्वत समान बन जाता है, जो स्वर्ण का है। ऐसे पुरुष की महिमा का वर्णन कोई भी मुख से नहीं कर सकता।

साधु-संतों की संगत 'सत्संग' है। संत स्वयं सत् का, सत्य का आचरण करने वालो होते हैं। हमारी संस्कृति में संतों का महत्वपूर्ण योगदान रही है। संसार में जीव का हित साधने वाले दो ही हैं- एक श्रुति-ग्रंथ और दूसरे संत। श्रुतियाँ दुर्बोध हैं किन्तु संतों की सीख सुबोध है। आत्मा की उन्नति अथवा मुक्ति को संत जन मानव-जाति का अंतिम उद्देश्य मानते हैं। संतों ने भक्ति-रस और स्वधर्म को अधिक महत्व दिया है। संतों के संग-सहवास से मनुष्य साधु-स्वभाव वाला बन जाता है। संत-समागम फलदायक होता है। सत्संग मानो संजीवनी है। इससे जीवन कल्याणमय हो जाता है। कहा गया है,

सतसंगत को फल यही, संशय रहइ न लेस।
ह्वै असथिर शुचि चित्त, पावे पुनि न कलेस।।

सच्चे साधु-संत मनुष्य मात्र के कल्याण-मित्र होते हैं। संत का सत्संग ज्ञान का झरना होता है, जहाँ मनुष्य अपनी आध्यात्मिक प्यास बुझा सकता है। संसार में रहकर भी संसार के न होने वाले संतों ने मनुष्य मात्र के लिए भक्ति रूपी सेतु बाँधा है, जिसकी सहायता से भव-सागर तिर जाना आसान हो गया है। सामी जी भी यही बात समझाते हैं। संतों की संगत से, सतगुरु की शरण में जाने से अविद्या मिट जाती है, भ्रम दूर हो जाते हैं। संत ही आत्मज्ञान कराने वाले होते हैं। अतः जो कोई शुद्ध भाव से संतों के उपदेश आदि का पालन करता है, वह भक्ति द्वारा अनंत सुखों की, परमानंद की प्राप्ति करता है।

सतसंगति में सुख बड़ा, जो करि जाने कोय।
आधो छिन सत्संग को, कलिमल ढारें खोय।।

■